**ओ३म्**

**‘शिवरात्रि और महर्षि दयानन्द’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

भारत में फाल्गुन महीने के कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी को शिवरात्रि का पर्व मनाने की परम्परा है। इसका आरम्भ महाभारत काल तक तो था नहीं। बौद्धकाल के आरभ में भी शिवरात्रि मनाये जाने की सम्भावना नहीं है क्योंकि मूर्तिपूजा जैनमत के प्रवर्तक स्वामी महावीर के बाद आरम्भ हुई। लगभग 2000-2500 पूर्व आरम्भ में मर्यादा पुरूषोत्तम श्री राम व योगेश्वर श्री कृष्ण की मूर्तियों की पूजा आरम्भ हुई और जब इसका प्रभाव बढ़ा तो मूर्तिपूजा का अनुशरण करने वाले अपने समय के प्रमुख व्यक्तियों ने संस्कृत में पद्य व काव्य रचना की योग्यता रखने वाले व्यक्तियों के समूह को दिशा निर्देश देकर पुराणों की रचना कराई। प्राचीन साहित्य में इनके नाम पोपदेव व बोपदेव ज्ञात होते है जिनका उल्लेख महर्षि दयानंद ने किया है। 18 पुराणों को देखकर यह भी अनुमान होता है कि उन दिनों मूर्तिपूजकों के भी अनेक सम्प्रदाय बन चुके थे अतः एक के द्वारा ऐसा करने पर दूसरों ने भी उनका अनुशरण किया और कई इष्ट देवता, उनके पुराणादि ग्रन्थ व पूजा आदि का विधान प्रचलित हो गया। इनमें से शिवपूजा का महात्म्य अन्यों से कुछ अधिक बताने या वर्णित किये जाने व लोगों में इसके लोकप्रिय या अधिक प्रचार के कारण लोगों ने इसे अपना लिया था। इसको अधिक प्रचारित करने के लिए ही किन्हीं कारणों से फाल्गुन मास की कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी दिन को चुना गया प्रतीत होता है। शिवरात्रि शब्छ में शिव शब्द वेदों में अनेक स्थानों पर आता है। इसका अर्थ है कि इस संसार को बनाने वाला ईश्वर कल्याणकारी गुण व स्वभाव वाला है। वेदों ने कहा है कि हमारा मन शिवसंकल्पों से युक्त होना चाहिये। इसका यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता कि हमारे मन में जन्मधारी शिव नामक कोई देवता प्रतिष्ठित हो जाये। वेदों द्वारा ईश्वर को अजन्मा बताये जाने के कारण उस ईश्वर का कभी जन्म न तो हुआ है और न भविष्य में होना सम्भव है। उसकी उपासना तो वर्ष के किसी एक दिन न करके प्रत्येक दिन, प्रातःसायं व हर पल व हर क्षण कर सकते हैं।

**मनमोहन कुमार आर्य**

 शिवरात्रि के दिन विशेष क्या होता है? दिन भर उपवास अर्थात् ग्रहण का निषेध रहता है। पुराणाधारित भगवान शिव की कथा का श्रवण करते हैं। मन्दिर में जाकर शिव मूर्ति वा शिव लिंग आदि का दर्शन करने के साथ शिवलिंग पर दूध व जल से अभिषेक करके वहां कुछ बेल पत्र व नैवेद्य धरते हैं। दिन में पुराण पर आधारित भगवान शिव की कथा के रूप में कुछ प्रसंगों को सुना करते हैं। आजकल प्रायः शिवभक्त एक आरती भी गाया करते हैं जिसके बोल है - ‘जय शिव ओंकारा .... ’ इत्यादि। रात्रि निकट के किसी मन्दिर में जागरण की परम्परा भी प्रचलित रही है। इतना करने मात्र से मनुष्य की सभी कामनाओं को सिद्ध होना बताया जाता है जो कि वेदादि ग्रन्थ पढ़ने पर निरर्थक सिद्ध होता है। इस प्रकार से लगभग 1 से 2 सहस्र वर्षों से यह शिवपूजा व शिवरात्रि का व्रत चला आ रहा है। मान्यता है कि अन्धकार के नाश के समान अविद्या व अज्ञान का नाश करना चाहिये और विद्या वा ज्ञान की वृद्धि करनी चाहिये। विद्या व ज्ञान प्राप्त करना होता है और अविद्या व अज्ञान बिना किसी प्रयास के स्वयं ही जीवन में चल पड़ता है। हम देखते हैं कि यदि कोई बुरी प्रथा एक बार प्रचलित हो जाये तो उसे रोकना व बदलना कठिन होता है। हम अपने जीवन में ही देखते हैं कि किसी व्यक्ति के जीवन में झूठ बोलने, चोरी करने, मांसाहार, मदिरापान, धूम्रपान, अण्डों का सेवन आदि करने की आदते हों तो वह उन बुराईयों को जानने पर भी छोड़ नहीं पाता। इसी प्रकार से अन्धविश्वास यदि एक बार प्रचलित हो जाते हैं तो उनका प्रभाव बड़ी ही कठिनता से समाप्त होता है और वह है विद्या व ज्ञान की वृद्धि़, सत्पुरूषों की संगति वा सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय व योगाभ्यास वा योगसाधना।

 12 फरवरी, 1825 को गुजरात प्रान्त के टंकारा नामक स्थान पर कर्षनजी तिवारी के यहां मूलशंकर नाम के बालक का जन्म होता है जिसे संसार महर्षि दयानन्द सरस्वती के नाम से जानता है। आपके पिता कट्टर पौराणिक व शिवभक्त थे। उन्होंने पुराणों की कथा सुन रखी थी व स्वयं भी इससे जुड़े सभी कर्मकाण्ड किया करते रहते थे। आपकी प्रेरणा से 14 वर्ष की आयु में शिवरात्रि के दिन आपने व्रत रखा और उसके सभी नियमों व परम्पराओं का मन-वचन-कर्म से पूरा पालन किया। मध्य रात्रि अपने ग्राम के निकटवर्ती शिवालय में पिता व ग्रामीणों के साथ जागरण करते हुए चूहों के मन्दिर के बिलों से बाहर निकलने और शिवमूर्ति शिवलिंग पर स्वेच्छा व स्वतन्त्रतापूर्वक उछाल-कूद करते हुए वहां भक्तों द्वारा चढ़ाये व रखे गये अन्न-अक्षतादि को खाने लगे। दयानन्दजी व्रत के नियमों का पालन करते हुए जाग रहे थे जबकि अन्य सो रहे थे। उनके बाल मन में प्रेरणा हुई वा विचार आया कि शिव भगवान तो सर्वशक्तिमान है तो यह इन क्षुद्र चूहों को भगा क्यों नहीं रहे वा उनके दुष्टता के कार्यों के लिए दण्डित क्यों नहीं कर रहे हैं। इस बात ने उनके मन में क्रान्ति कर दी। पिता को जगा कर उन्होंने इस विषय में प्रश्न किये। समाधान न होने पर वह व्रत व पूजा का त्याग कर घर आ गये और भोजन कर सो गये। इस घटना ने उन्हें सच्चे शिव व ईश्वर की खोज करने की प्रेरणा की जो उन्हें मृत्यु के डर व दुःखों से बचा कर जन्म-मरण के चक्र से छुड़ा सके। कालान्तर में उनके परिवार में बहिन व चाचा की मृत्यु की घटनाएँ घटीं जिससे उन्हें तीव्र वैराग्य हो गया और आध्यात्मिक जगत की सच्चाईयों को जानने के उद्देश्य से उन्होंने 21 वर्ष की आयु में गृह त्याग कर दिया।

 सन् 1860 तक की 14 वर्ष की अवधि तक वह देश भर में साधु-सन्यासियों-योगियों व धार्मिक विद्वानों की खोज करते रहे, जो मिले उनसे सृष्टि के रहस्यों व आध्यात्मिक सच्चाईयों को जाना और योग सीखा। उन्होंने योग विद्या में भी सफलता प्राप्त की परन्तु विद्या की उनकी भूख समाप्त नहीं हुई। वह सन् 1860 में मथुरा में दण्डी गुरू प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द सरस्वती से अध्ययन करने के लिए उपस्थिति होते हैं और लगभग ढ़ाई वर्ष तक अध्ययन करने के बाद संसार के सभी रहस्यों को जानने में कृतकार्य होते हैं। गुरूजी से उन्हें सत्य व असत्य को जानने की कसौटी प्राप्त होती है। जिन ग्रन्थों में प्राचीन ऋषियों व विद्वानों की निन्दा व आलोचना है तथा जिन ग्रन्थों में सृष्टिकर्म के विरूद्ध तर्कहीन सिद्धान्त हों वह सत्य नहीं हो सकते, उनका त्याग कर देना चाहिये। उनकों यह भी ज्ञात हुआ कि वेद सृष्टि के आरम्भिक ग्रन्थ हैं जो आदि सृष्टि में ईश्वर ने अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न मनुष्यों में से चार ऋषियों को प्रदान किये थे। यह वेद सभी सत्य विद्याओं के ग्रन्थ हैं। इनमें ज्ञान, कर्म व उपासना का विधान व वर्णन है। इनका अध्ययन, आचरण व वैदिक ज्ञान को धारण करने से मनुष्य का जीवन सफल होकर जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति प्राप्त होती है। गुरूजी की आज्ञा से सन् 1863 में गुरू दक्षिणा सम्पन्न कर वह वेदों के प्रचार-प्रसार व अज्ञान व अविद्या के नाश के लिए डट गये और इसमें सफल भी हुए। उन्होंने जो प्रचार किया उसमें वह सर्वत्र विजयी रहे। सैद्धानिक व वैचारिक आधार पर निष्पक्ष व निःस्वार्थ बुद्धि वाले विद्वानों व बुद्धिजीवियों ने उनके सत्य व तर्क पर आधारित वैदिक सिद्धान्तों व मान्यताओं को स्वीकार किया। सृष्टि की आदि से चली आ रही परम्पराओं और वैदिक ज्ञान के आधार पर उन्होंने ईश्वर, जीवात्मा और प्रकृति के सत्य स्वरूप का निरूपण व प्रकाश किया। उन्होंने बताया कि मनुष्य वा जीवात्मा का कार्य विद्या की प्राप्ति कर ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना करना है। इससे ईश्वर के अनुरूप मनुष्यों के गुण-कर्म-स्वभाव बनते हैं। ईश्वर की कृपा से जीवात्मा का सामथ्र्य बढ़ता है और यह स्थिति प्राप्त होती है कि बड़े से बड़े वा पहाड़ के समान दुःख व संकट आने पर, यहां तक की मृत्यु सम्मुख होने पर भी, मनपुष्य घबराता नहीं है। ईश्वर व जीवात्मा के स्वरूप तथा गुणों को जानकर, वेदमन्त्रों में निहित स्तुति-प्रार्थना-उपासना के विधान से उसके गुणों-कृपाओं का चिन्तन करते हुए व उसका धन्यवाद करते हुए मनुष्य ईश्वर को प्राप्त कर लेता है और मुक्त हो जाता है। ईश्वर की उपासना करने पर किसी मूर्ति व देवालय में जाकर पूजा अर्चना करने की कोई आवश्यकता नहीं रहती। उन्होंने बताया कि मनुष्यों को अपने आचरण को शुद्ध करना चाहिये और ईश्वर की आज्ञा के विपरीत आचरण नहीं करना चाहिये। ध्यान-चिन्तन व ईश्वर के प्रति विनीत भाव एवं उसकी स्तुति में वेद मन्त्रों व अपनी भाषा में स्तुति वचन बोलने के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार की पौराणिक क्रियाओं की आवश्यकता नहीं होती।

 शिवरात्रि का दिन विद्या की उन्नति व अविद्या के नाश का दिन है। इस दिन को अब अविद्या के नाश व विद्या के प्रकाश के दिन के रूप में मनाया जाना समीचीन है। ऐसा ही देश-विदेश की सभी आर्य समाजों में होता भी है जहां इस दिन को ऋषि-बोधोत्सव के दिन के रूप में मनाया जाता है। ऐसा करके यदि सद्ग्रन्थों के स्वाध्याय व ऋषि-मुनियों की भांति सदाचरण की प्रेरणा मिलती है तो जीवन को सफल किया जा सकता है। इन्हीं शब्दों के साथ इस लेख को विराम देते हैं।

 **-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः 09412985121**